**ओ३म्**

**‘महर्षि दयानन्द के बहुप्रतिभावान् अद्वितीय शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महर्षि दयानन्द (1825-1883) ईश्वर के सच्चे स्वरुप के जिज्ञासु तथा उसकी प्राप्ति के उपायों के अनुसंधानकर्त्ता थे। बाइसवें वर्ष में उन्होंने टंकारा जनपद मोरवी, गुजरात स्थित अपने सुखी व सम्पन्न परिवार का त्याग कर दिया था और देश भर में घूम कर सच्चे धार्मिक विद्वानों व योगियों की तलाश की। जो विद्वान व योगी मिले तथा उनसे जो ज्ञान व मार्गदर्शन प्राप्त हुआ, उसे उन्होंने ग्रहण किया। सन् 1857 की देश की आजादी के लिए जो क्रान्ति हुई, उसमें उनकी भूमिका व कार्यों कका प्रमाणिक ज्ञान उपलब्ध नहीं है। इसका कारण है कि यदि वह उसका वर्णन करते तो अंग्रेजों द्वारा उन्हें बगावत का दण्ड दिया जाता और वह देश सुधार का कार्य न कर पाते। इस प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के समय वह 32 वर्ष के युवा ब्रह्मचारी थे। उनके द्वारा लिखित सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में व्यक्त विचारों से ज्ञात होता है कि वह इस आजादी की लड़ाई की कुछ घटनाओं के प्रत्यक्ष दर्शी थे और उनकी इसमें महत्वूपर्ण भूमिका हो सकती है। सन् 1860 में स्वामी दयानन्द अध्ययन के लिए मथुरा के प्रज्ञाचक्षु दण्डी गुरू विरजानन्द जी की कुटिया में पहुंचते हैं और लगभग 3 वर्ष तक अध्ययन कर वेद एवं वैदिक साहित्य के ज्ञान से सम्पन्न होते हैं। योग में प्रवीणता व उसके आठ अंगों व साधनों को वह पहलेे ही सिद्ध कर समाधि अवस्था तक पहुंच चुके थे। अब उनके लिए कुछ जानना शेष नहीं था। गुरू विरजानन्द की आज्ञा व प्रेरणा से उन्होंने देश में व्याप्त अज्ञान, अन्धविश्वास व कुरीतियों को दूर करने का व्रत लिया। वेदों के ज्ञान के आधार पर तुलना करने पर उन्हें मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, मृतक श्राद्ध, बाल विवाह, बेमेल विवाह, बहु विवाह, ब्रह्मचर्य का नाश वा इसका पालन न करना, स्त्री व शूद्रों को शिक्षा से दूर रखना व इनके लिए शिक्षा का निषिद्ध होना, जन्मना जातिवाद वा सामाजिक विषमता, देश में वेद व वैदिक साहित्य की शिक्षा की व्यवस्था न होना आदि कार्य न केवल वेद विरुद्ध लगे अपितु देश की पराधीनता व सभी कष्टों, अवनति का कारण भी यही अज्ञानता व अन्धविश्वास से पूर्ण कार्य सिद्ध हुए।

सन् 1863 में गुरु विरजानन्द जी से विदा लेकर वह वेदों व सद्ज्ञान के प्रचार में सर्वात्मा समर्पित हो गये। एक स्थान से दूसरे, दूसरे से तीसरे पर जाकर वहां कुछ दिन रहकर प्रचार करते थे। वैदिक मान्यताओं का युक्ति व तर्क तथा शास्त्रीय आधार पर मण्डन करते व मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, मृतक श्राद्ध आदि का खण्डन तथा स्त्री व शूद्रों सहित सभी की समान गुरुकुलीय पद्धति से शिक्षा का समर्थन करने के साथ जन्मना जातिवाद का भी खण्डन करते थे। उन्होंने ही सर्वप्रथम अस्पर्शयता के कलंक को मिटाया और दलित बन्धुओं को वेदों सहित सभी प्रकार की शिक्षा का अधिकार देकर ऊंचा उठाया व गौरव दिलाया। इसी प्रकार से प्रचार करते हुए वह अगस्त, सन् 1880 में बांस बरेली पहुंचे और यहां जमकर प्रचार किया। इन दिनों स्वामी श्रद्धानन्द पूर्व नाम मुंशीराम अपने पिता, बांस बरेली के पुलिस कोतवाल नानकचन्द जी के साथ यहां रहते थे। मुंशीराम बचपन से ही अपने कुल की रीति से मूर्तिपूजा करते थे। सन् 1876 में वह काशी में पिता के साथ रहते थे तथा नियमित रुप से काशी विश्वनाथ मन्दिर में पूजा अर्चना के लिए जाया करते थे। एक दिन मन्दिर में पूजा अर्चना के लिए पहुंचे तो मन्दिर के पुलिस के पहरेदारों ने रोक लिया और बताया कि वहां रीवां की रानी साहिबा पूजा-अर्चना कर रही हैं। उनके जाने के बाद ही किसी भक्त को अन्दर जाकर पूजा करने की अनुमति है। ईश्वर की पूजा पर रानी के विशेषाधिकार की इस घटना के प्रभाव से मुंशीराम जी का मूर्तिपूजा के प्रति विश्वास समाप्त हो गया और वह नास्तिक बन गये। महर्षि दयानन्द का 14 वर्ष की अवस्था में शिवपूजा करते हुए मूर्तिपूजा से विश्वास समाप्त हुआ था और स्वामी श्रद्धानन्द का मूर्तिपूजा में कुछ समय के लिए बाधा डालने के कारण, मूर्ति के ईश्वर होने व उसमें किसी प्रकार की दिव्यता व शक्ति के होने का भ्रम दूर हुआ था। महर्षि दयानन्द को इस घटना से सच्चे ईश्वर की खोज की प्रेरणा मिलती है तो 20 वर्षीय युवक मुंशीराम इस घटना के प्रभाव से ईश्वर अविश्वासी वा नास्तिक बन जाता है। इसके बाद उनका झुकाव ईसाइयत की ओर होता है परन्तु अपने ईसाई पथप्रदर्शक को जब दुष्कर्म करते देखते हैं तो उनकी नास्तिकता में बची खुची कमी भी दूर होकर वह पूर्ण नास्तिक हो जाते हैं। उनके पिता नानकचन्द जी को मुंशीराम जी की इस स्थिति का पूरा ज्ञान है।

बांस बरेली में स्वामी दयानन्द जी के उपदेशों में उपद्रव रोकने व सुरक्षा की व्यवस्था का दायित्व मुंशीराम जी के नगर कोतवाल पिता को दिया जाता है। वह स्वयं श्रद्धावान पौराणिक कर्मकाण्डी व्यक्ति थे। स्वामी दयानन्द के उपदेशों में डियूटी देते हुए वहां वह बड़े-बड़े अंगे्रज अधिकारियों को देखते हैं और स्वामी दयानन्द के ईश्वर विषयक विचारों को सुनते हैं तो उन्हें विश्वास हो जाता है कि उनके पुत्र की नास्तिकता स्वामी दयानन्द जी के प्रवचन सुनकर दूर हो सकती है। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी आत्मकथा **‘कल्याण मार्ग का पथिक’** में इस सम्बन्ध में लिखा है कि **‘रात को घर आते ही (पिताजी ने) मुझे कहा-‘‘बेटा मुंशीराम ! एक दण्डी संन्यासी आये हैं, बड़े विद्वान् और योगिराज हैं। उनकी वक्तृता सुनकर तुम्हारे संशय दूर हो जाऐंगे। कल मेरे साथ चलना।”** श्रद्धानन्द जी आगे लिखते हैं कि उन्होंने पिता को कह तो दिया कि चलंूगा परन्तु मन में वही भाव रहा कि केवल संस्कृत जाननेवाला साधु बुद्धि की बात क्या करेगा? दूसरे दिन बेगम बाग की कोठी में पिता जी के साथ वह पहुंचते हैं जहां व्याख्यान हो रहा था। उस दिव्य आदित्यमूर्ति (दयाननन्द) को देख कुछ श्रद्धा उत्पन्न हुई, परन्तु जब पादरी टी.जे. स्काट और दो-तीन अन्य युरोपियनों को उत्सुकता से बैठे देखा तो श्रद्धा और भी बढ़ी। अभी दस मिनट वक्तृता नहीं सुनी थी कि मन में विचार किया-**‘यह विचित्र व्यक्ति है कि केवल संस्कृतज्ञ होते हुए युक्तियुक्त बातें करता है कि विद्वान् दंग हो जाएं।’** व्याख्यान परमात्मा के निज नाम ओ३म् पर था। **वह पहले दिन का आत्मिक आह्लाद कभी भूल नहीं सकता। नास्तिक रहते हुए भी आत्मिक आह्लाद में निमग्न कर देना ऋषि-आत्मा का ही काम था।’**

स्वामी दयानन्द जी की जिस घटना ने स्वामी श्रद्धानन्द जी को सर्वाधिक प्रभावित किया वह व्याख्यान के दूसरे दिन स्वामी दयानन्द जी द्वारा खण्डन न करने की सलाह देने के विरुद्ध सार्वजनिक रूप से अंग्रेज कमिश्नर को कहे गये यह शब्द थे-**‘‘लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रोधित होगा, अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा। अरे ! चक्रवर्ती राजा भी क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे।”** इसके पीछे एक श्लोक **‘नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। (गीता 2/23) पढ़कर आत्मा की स्तुति की।** न शस्त्र उसे काट सके, न आग उसे जला सके, न पानी उसे गला सके और न हवा उसे सुखा सके। वह नित्य, अमर है। फिर गरजते शब्दों में बोले-**‘‘यह शरीर तो अनित्य है, इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है। इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नाश कर दे।”** फिर चारों ओर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर सिंहनाद करते हुए कहा**-‘‘किन्तु वह शूरवीर पुरुष मुझे दिखाओं जो मेरी आत्मा का नाश करने का दावा करे। जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखायी नहीं देता तब तक मैं यह सोचने के लिए तैयार नहीं हूं कि मैं सत्य को दबाऊंगा या नहीं।”** **सारे हाल में सन्नाटा छा गया। रुमाल का गिरना भी सुनायी देता था।** इस घटना ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। दूसरी प्रमुख घटना स्वामी श्रद्धानन्द जी के महर्षि दयानन्द जी से बांस बरेली में ही ईश्वर के अस्तित्व पर किए गए प्रश्न थे जिनका महर्षि दयानन्द से उत्तर सुनकर वह निरुत्तर हो गये। वह लिखते हैं-‘यद्यपि आचार्य दयानन्द के उपदेशों ने मुझे मोहित कर लिया था, **तथापि मैं मन में सोचा करता था कि यदि ईश्वर और वेद के ढकोसले को पण्डित दयानन्द स्वामी तिलांजलि दे दें तो फिर कोई भी विद्वान् उनकी अपूर्व युक्ति और तर्कना-शक्ति का सामना करनेवाला न रहे।** मुझे अपने नास्तिकपन का उन दिनों अभिमान था। एक दिन ईश्वर के अस्तित्व पर आक्षेप कर डाले। पांच मिनट के प्रश्नोत्तर में ऐसा घिर गया कि जिह्वा पर मुहर लग गयी। मैंने कहा-**‘महाराज ! आपकी तर्कना बड़ी लीक्ष्ण है। आपने मुझे चुप तो करा दिया, परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर की कोई हस्ती (अस्तित्व) है।’** दूसरी बार फिर तैयारी करके गया परन्तु परिणाम पूर्ववत् ही निकला। तीसरी बार फिर पूरी तैयारी करके गया परन्तु मेरे तर्क की फिर पछाड़ मिली। मैंने फिर अन्तिम उत्तर वही दिया-**‘महाराज ! आपकी तर्कना-शक्ति बड़ी प्रबल है। आपने मुझे चुप तो करा दिया, परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर की कोई हस्ती है।’** **महाराज पहले हंसे, फिर गम्भीर स्वर से कहा ‘देखो, तुमने प्रश्न किये, मैंने उत्तर दिये-यह युक्ति की बात थी। मैंने कब प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा विश्वास परमेश्वर पर करा दूंगा? (मुंशीराम!) तुम्हारा परमेश्वर पर विश्वास उस समय होगा जब वह प्रभु स्वयं तुम्हें विश्वासी बना देंगें।** अब स्मरण आता है कि आगे लिखा उपनिषद्वाक्य उन्होंने पढ़ा था-**‘नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेघया न बहुनां श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम।।’** (कठोपनिषद 1/2/23)’’। इन पंक्तियों के लेखक को लगता है कि स्वामी दयानन्द जी से इस संवाद के परिणामस्वरुप श्रद्धानन्द जी की नास्तिकता अधिकांशतः समाप्त हो गई थी और शेष रही नास्तिकता कुछ समय बाद समाप्त हो गई। इस सत्संग का परिणाम भारत के लिए बहुत शुभ हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द जी न केवल स्वामी दयानन्द के अद्भुत विलक्षण अनुयायी बने अपितु उन्होंने देश में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना द्वारा वेदों सहित सभी विषयों की शिक्षा के प्रचार व सुधार के साथ देश की आजादी, समाज सुधार, आर्य व हिन्दू संगठन का कार्य, दलितोद्धार, बिछुड़े बन्धुओं की शुद्धि, निर्भीक साहसपूर्ण पत्रकारिता, अंग्रेजों के अन्यायकारी कार्यों का विरोध, प्रसिद्ध देशभक्तों व आर्यसमाज के विरुद्ध अंग्र्रेजों के मुकदमों आदि नाना कार्यों में अपना उल्लेखनीय योगदान किया। स्वामी श्रद्धानन्द संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी-उर्दू के जानकार व सिद्ध लेखक भी थे।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी आत्मकथा **‘कल्याण मार्ग का पथिक’** की भूमिका में महर्षि दयानन्द के प्रति बहुत ही मार्मिक शब्दों का प्रयोग किया है जो हृदय को छूते हैं। उनके इस अनुपम श्रद्धा से युक्त शब्द-संग्रह को प्रस्तुत कर लेख को विराम देते हैं। वह लिखते हैं-**”ऋषिवर (दयानन्द) ! तुम्हे भौतिक शरीर त्यागे 41 वर्ष हो चुके (यह शब्द स्वामी जी ने सन् 1925 में लिखे थे), परन्तु तुम्हारी दिव्य मूर्ति मेरे हृदय-पट पर अब तक ज्यों-की-त्यों अंकित है। मेरे निर्बल हृदय के अतिरिक्त कौन मरणधर्मा मनुष्य जान सकता है कि कितनी बार (चरित्र से) गिरते-गिरते तुम्हारे स्मरणमात्र ने मेरी आत्मिक रक्षा की है। तुमने कितनी गिरी हुई आत्माओं की काया पलट दी, इसकी गणना कौन मनुष्य कर सकता है? परमात्मा के बिना, जिसकी पवित्र गोद में तुम इस समय विचर रहे हो, कौन कह सकता है कि तुम्हारे उपदेशों से निकली हुई अग्नि ने संसार में प्रचलित कितने पापों को दग्ध कर दिया है? परन्तु अपने विषय में मैं कह सकता हूं कि तुम्हारे सत्संग ने मुझे कैसी गिरी हुई अवस्था से उठाकर सच्चा जीवन-लाभ करने के योग्य बनाया? मैं क्या था इसे इस कहानी में मैंने छिपाया नहीं। मैं क्या बन गया और अब क्या हूं, वह सब तुम्हारी कृपा का ही परिणाम है। इसलिए इससे बढ़कर मेरे पास तुम्हारी जन्म-शताब्दी (सन् 1925 ई.) पर और कोई भेंट नहीं हो सकती कि तुम्हारा दिया आत्मिक जीवन तुम्हें ही अर्पण करूं। तुम वाणी द्वारा प्रचार करने वाले केवल तत्ववेत्ता ही न थे परन्तु जिन सच्चाइयों का तुम संसार में प्रचार करना चाहते थे उनको क्रिया में लाकर सिद्ध कर देना भी तुम्हारा ही काम था। भगवान् कृष्ण की तरह तुम्हारे लिए भी तीनों लोकों में कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया था, परन्तु तुमने भी मानव-संसार को सीधा मार्ग दिखलाने के लिए कर्म की उपेक्षा नहीं की। भगवन् मैं तुम्हारा ऋणी हूं, उस ऋण से मुक्त होना चाहता हूं। इसलिए जिस परमपिता की असीम गोद में तुम परमानन्द का अनुभव कर रहे हो, उसी से प्रार्थना करता हूं कि मुझे तुम्हारा सच्चा शिष्य बनने की शक्ति प्रदान करे।”**

स्वामी श्रद्धानन्द जी का जीवन अनेक प्रेरणादायक घटनाओं से पूर्ण है। देश व जाति के सुधार के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पण किया। 23 दिसम्बर, 2015 को 89 वें बलिदान दिवस पर उन्हें श्रद्धासुमन प्रस्तुत हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**